आत्मकथाओं में स्त्री दलन और मुक्ति

डॉ. उमा मीणा
सह-आचार्य, हिंदी विभाग
मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सारांश:
पारिवारिक और सामाजिक संरचना में परम्पराओं और मर्यादाओं के नाम पर स्त्रियों को कई प्रकार के बंधनों में बांधकर रखा जाता है जिनके कारण पुरुषों के समान वे अपना विकास नहीं कर पातीं। इन दोहरे मानदंडों के प्रति स्त्री ने अपना आक्रोश और प्रतिरोध अपनी आत्मकथाओं में दर्ज किया है। विविध पारिवारिक और सामाजिक बंधनों में जिस प्रकार के शोषण और भेदभाव के कारण वे सिकुड़ी और सिमटी रही हैं, उन बंधनों से मुक्त होने की अपनी झटपटाहट और मुक्ति के प्रयासों को वे अपनी आत्मकथाओं में प्रस्तुत करती हैं । स्त्री चाहे वह जिस भी देश, संप्रदाय, समाज, जाति, वर्ग की हो उन्हें इस प्रकार के संघर्षों से गुजरना पड़ा है। तहमीना दुर्रानी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भण्डारी अपनी आत्मकथाओं में परिवारों में लड़के और लड़की के बीच किए जाने वाले भेदभाव, चाहे वह उनके पालन- पोषण में हों, उनके खेलकूद, शिक्षा-दीक्षा आदि में, सभी को अपने बचपन की स्मृतियों में याद करती हैं । इनमें से बहुत सारी लेखिकाओं को शिक्षा प्राप्ति के लिए भी बहुत संघर्ष करना पड़ा है। इस्मत चुगताई, मैत्रेयी पुष्पा और सुशीला टांकभौरे की आत्मकथाएं स्त्री शिक्षा की जद्दोजहद को प्रस्तुत करती हैं। भारतीय समाज में विवाह व्यक्तिगत मामला नहीं है वरन लड़के-लड़कियों के लिए जीवनसाथी का चुनाव प्रायः माता-पिता द्वारा किया जाता है। शिक्षा प्राप्त कर अपने पैरों पर खड़ी होने वाली स्त्री के लिए भी विवाह के निर्णय की स्वतंत्रता परिवार और समाज के द्वारा नहीं मिलती है। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडली बसे' , रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' और मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' तथा कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में इस प्रकार की स्थितियां देखने को मिलती हैं । अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा के बल पर किसी मुकाम को हासिल कर लेने वाली स्त्री भी प्रायः दोयम दर्जे पर रखी जाती है। स्त्रियों को साहित्य क्षेत्र में , राजनीति में तथा व्यापारिक क्षेत्र में भी तमाम उपलब्धियों के बावजूद वो सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं मिल पाती जो एक पुरुष प्राप्त करता है। स्त्री के श्रम और यौन शोषण की स्थितियां घर और बाहर दोनों जगह बनी रहती हैं जिन से टकराते हुए स्त्री अपनी पहचान बनाती है। तहमीना दुर्रानी और रमणिका गुप्ता जहाँ राजनीति में अपनी पहचान बनाती हैं तो इस्मत चुगताई, मन्नू भण्डारी और मैत्रेयी पुष्पा साहित्यिक क्षेत्र में अपना नाम दर्ज करती हैं, वहीँ प्रभा खेतान लीक से अलग चलते हुए व्यापारिक क्षेत्र में उपलब्धियां अर्जित करती हैं ।

बीज शब्द :
बंधन, स्वतंत्रता, परंपरा, मुक्ति, पहचान, निर्णय, प्रतिरोध

आज स्त्रियाँ विविध विधाओं में अपने लेखन के माध्यम से साहसपूर्वक अपने जीवन के उन पक्षों को उजागर कर रही हैं जो अब तक उनके निजी थे । अपनी नज़र से वे परिवार और समाज का विश्लेषण कर रही हैं । हमारी सामाजिक संरचना में स्त्री-पुरुष के बीच पक्षपात को पोषित करते हुए स्त्री को तमाम तरह के बंधनों में जीने को बाध्य किया गया । इन बंधन और मर्यादाओं की जकड़न से मुक्ति की चाह स्त्रियों में सदा से रही है । स्त्री आत्मकथाओं में पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था में अपने प्रति बरती गई उपेक्षा के प्रति आक्रोश और प्रतिरोध के स्वर सुनाई देते हैं । पारिवारिक बंधनों खास तौर से माँ की हुकूमत से आजाद होने की चाह तहमीना में तीव्रतर है। वह कहती हैं कि ''हमें इस तरह पाला-पोसा जा रहा था कि हम खंडित मानसिकता वाले बनें।

हमारे यहाँ सहज भावनाओं के मुकाबले एकदम चाक-चौबंद दिखने को ज्यादा अहमियत दी जाती थी। अपने आपको तलाशने का तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता था। अस्मिता और निजता को कुचल दिया जाता था। शख्सियत बन ही नहीं पाती थी। मेरा दिमाग तो जैसे इस घर से भाग निकलने के गुप्त ख्यालों का अभयारण्य बन गया।''[1] तसलीमा भी ऐसे ही बंधनों से आजाद होना चाहती है। अपनी इच्छा को प्रकट करती हुई वह कहती है–''मैं बड़े भैया से प्यार भी करती थी, ईर्ष्या भी। वे जहाँ चाहे जा सकते थे, जो चाहे कर सकते थे। वे मोटर साइकिल से पूरा शहर घूमते रहते थे। वे विभिन्न शहरों में जाते थे–टाँगाइल, जमालपुर, नेत्रकोना। मुझे भी घूमने की बड़ी इच्छा करती।''[2] अपनी स्वाभाविक इच्छाओं को कुचले जाने का वे विरोध करती हैं ।

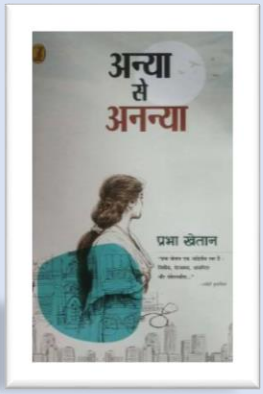

प्रभा खेतान ने अपने लिए परंपरागत स्त्री से भिन्न एक अलग रास्ता चुना था। प्रभा नारी के परंपरागत वैवाहिक जीवन से खुश नहीं है। वह कहती है–''मुझे अम्मा की तरह नहीं होना, कभी नहीं। भाभी की घुटन भरी जिंदगी की नियति मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। ... अम्मा, जीजी, भाभीजी, ताई, चाचियाँ क्या सभी रोने के लिए पैदा हुईं।''[3] इसलिए वह विवाह न करने का निश्चय करती है। उसकी नजरों में सात फेरों का कोई महत्त्व नहीं है। वह डाक्टर सर्राफ से कहती है–जो घट गया, जिससे प्रेम हो गया मैं उसे ही विवाह मानती हूँ और समाज? मुझे समाज की परवाह नहीं। वह मानती है कि आर्थिक स्वतंत्रता ही स्त्री की स्वतंत्रता है। वह अपने स्कूल की प्रधानाध्यापिका से कहती भी है–''आप नहीं जानतीं, बहनजी, औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है।''[4]

अपने जीवन के अंतरंग प्रसंगों को पूर्ण ईमानदारी के साथ उद्घाटित करती प्रभा यह स्वीकार करती है कि जब वह डाक्टर सर्राफ की ओर से अपने को उपेक्षित समझती है तो विद्रोह स्वरूप निर्णय लेती है कि ''पुरुष जैसे औरत को काम में लेता है, औरत भी वैसे ही पुरुष का व्यवहार कर सकती है। औरत भी तो कह सकती है तू नहीं तो कोई और सही। कम-से-कम एक बार किसी अन्य पुरुष की बाहों में अपना होना तो महसूस कर पाऊँगी।''[5] डॉक्टर सर्राफ के साथ अपने संबंधों के चलते भारतीय समाज में उन्हें किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, यह भी वे अपनी जीवन कहानी में बताती हैं। वह बताती हैं कि ''मैं जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से अपना पाठ सीख रही थी। यह भी समझ रही थी कि केवल पढ़ने से, अध्ययन-चिंतन और लेखन से स्त्री स्वतंत्र नहीं हो जाती, सामाजिक पंगुता के विरुद्ध क्रोध और विद्रोह की भावना व्यक्त करने से ही मैं व्यक्ति नहीं हो जाऊँगी। संस्कारों से, परम्परा से मुक्ति की यात्रा बहुत लम्बी है और बड़ी कठिन। दो पैसे कमा लेने से ही मुझे निर्णय की स्वतंत्रता मिल जाएगी ऐसा नहीं है।''[6]

विवाह के पश्चात् तहमीना, मुस्तफा के दोहरे व्यक्तित्व के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती और उसके शोषण का शिकार होती है। मुस्तफा के द्वारा बेरहमी से पीटे जाने का उसके मस्तिष्क और व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है,वह कहती है–''मैंने महसूस किया कि हमारी शादी हमारे संबंध पर नहीं बल्कि जटिल बाहरी शक्तियों पर सधी थी, जैसे–मेरा अहं, मेरे परिवार और समाज की नजरों में विफलता का भय, मेरे बच्चों को खोने का भय, एक शादीशुदा महिला की हैसियत खोने का भय।''[7] मुस्तफा के दोहरे व्यक्तित्व के कारण तहमीना सदा तनावग्रस्त रहती है ''मैं हमेशा अभिनय करती रहती थी क्योंकि मुझे डर था कि मेरी वैवाहिक जिंदगी की पोल खुल जाएगी ।"[8] तहमीना द्वारा अपनी आत्मकथा अपने अस्तित्व की पहचान को बनाए रखने के लिए लिखी गई है। आत्मकथा के अंत में वह अपनी पहचान ढूँढती हुई द्वन्द्वग्रस्त रहती है–''लेकिन अगर मैं बेगम मुस्तफा खर नहीं थी, तो फिर मैं थी कौन? मेरे बचपन की तहमीना दुर्रानी अब मेरे लिए अजनबी थी, एक भ्रमित नन्हीं लड़की थी जिसके कद से अब मैं ऊपर निकल चुकी थी। मैं उससे कोई नाता नहीं जोड़ पाती थी। क्या मेरे अंदर कोई नई तहमीना दुर्रानी थी, जो ज्यादा उम्रदराज, ज्यादा दु:खी, लेकिन ज्यादा समझदार भी थी।''[9] अपनी पहचान को बरकरार रखने के लिए ही उसने परंपरागत खामोशी को तोड़ते हुए अपनी आत्मकहानी 'मेरे आका' लिखी और मुस्तफा के द्वारा किये गए अपने अपमान के जवाब में कहा–''देखो मुस्तफा, अब दुनिया जल्दी ही तुम्हें सिर्फ तहमीना दुर्रानी के भूतपूर्व पति के रूप में जानेगी।''[10]

आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' में पति की मृत्यु के बाद अपनी कमजोर स्थिति को मजबूत बनाने के लिए कस्तूरी शिक्षा प्राप्त करके अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती है मगर परंपरा और रूढ़ियों से ग्रस्त उस गांव में जहाँ विधवा स्त्री का घर से बाहर पाँव रखना संभव ही नहीं है, वहाँ परंपरा तोड़कर कस्तूरी का शिक्षा के लिए बाहर जाना

एक क्रांतिकारी कदम होगा । इसी अंतर्द्वन्द्व से ग्रसित कस्तूरी सोचती है–''ससुर मना नहीं करेंगे, मगर रजामन्दी देंगे, इसमें संदेह है। दूसरी विधवाएँ हैं, वे कुछ ऐसा सोचती हैं, जिस पर गाँव उँगली उठाए और घर के लोग शर्मसार हो? अगर अपनी ऐसी-वैसी इच्छा को नहीं दबा पातीं तो कुआँ, पोखर में डूब मरती है। विधवा का इतिहास तो इतना ही है, फिर नए भविष्य का उटपटाँग माना जाने वाला रवैया क्यों जोड़ने जा रही हूँ? अपनी जिदें, अपना पागलपन अब तक भरसक छिपाया, मगर क्या कुछ ढँका-छिपा रह सका? आज जब अपनी गृहस्थी समेटकर पीहर और ससुराल की मर्यादा का पालन करते हुए, 'विधवा कर्तव्य' जैसी किताब पढ़नी चाहिए और परपुरुषों से बचकर रहना चाहिए, मैं पाँव बाहर निकाल देना चाहती हूँ, जहाँ रास्ते और कस्बे में परपुरुषों से ही वास्ता पड़ेगा। थू-थू तो बहुत होगी।''[11] अंतत: शिक्षा से ही उसे अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का मार्ग दिखाई देता है । समाज के लाख-लाख धिक्कार के बावजूद वह दृढ़ता से अपना मार्ग चुनती है।

अबोध अवस्था से ही देह के प्रति पुरुषों की हवस भरी दृष्टी का आभास कस्तूरी की बेटी मैत्रेयी को आतंकित और असुरक्षित बना डालता है और वह अपने को दबी-ढकी चुप्पियों में समेट लेती है । यही कारण है कि विद्रोह का विस्फोट आत्मकथा के रूप में अपने इन्हीं अनुभवों को सामने रखता है । बचपन से ही माँ के ममत्व से वंचित मैत्रेयी समाज में पुरुषों की अभद्रता झेलती आई है इसलिए अब जब उसके सत्रह साल पूरे हो गए हैं, वह एक पुरुष से विवाह करके समाज में एक स्थिर और सम्मानजनक जीवन जीना चाहती है। क्योंकि वह जानती है ''एक अबोध अल्हड़ लड़की और अनुभवी स्त्री के अकेले रहने में फर्क होता है। ... पौधे को चर जाने वाले पशुओं से बचाने के लिए लोहे या ईंटों की ऊँची हवादार रेलिंग के भीतर रखा जाता है।''[12] और वह अपनी माँ से विनती करती है कि ''मेरी स्वाभाविक इच्छाओं को कठोर उपवास में मत बदलो। मैं अपनी इन्द्रियों को कसते-कसते दूसरों की हवस का शिकार हुई जाती हूँ।''[13] विवाह को सदा ही स्त्री के लिए बंधन मानने वाली महिला मंगल की अधिकारी, मैत्रेयी की माँ कस्तूरी विवाह का विरोध करती है क्योंकि ''इस लड़की को ऊँची शिक्षा दिलाकर अफसर बनाने की साध थी उनकी। सोचा था–एक दिन मैत्रेयी उनके तथा उन जैसियों के साथ कदम-दर-कदम चलकर प्रशासनिक व्यवस्था से उन तमाम गड़बड़ों को उखाड़ फैकेंगी, जो जूझती, आगे बढ़ती और रूकावटों के कारण गिरती औरतों की टोली से सहज सामान्य जीवन जीने का हक छीनती रहती हैं। वह स्त्री के सशक्तीकरण की मशाल अपने हाथ ले लेगी। लोग कहेंगे, कस्तूरी माँ के रूप में धन्य है।'[14]

माँ के नियंत्रण में तनावग्रस्त रहने वाली मैत्रेयी की पीड़ा फूट पड़ती है और वह माँ से कहती है ''मैं थूकती हूँ ऐसी आजादी पर, जिसके देने वाली दुमुँही हो। अनपढ़, अशिक्षित होने के बावजूद उन्होंने अपनी कमान अपने हाथ में रखी और किसी दूसरे को अपने जीवन का फैसला लेने नहीं देती। मेरे हिसाब से वे औरत नहीं रहीं ... और आगे सुनो कि अपनी बेटी को ब्याह के कारण 'छि:' की निगाह से देखने वाली कस्तूरी स्त्री नहीं हो सकती। तो फिर माँ कैसे हो सकती है?''[15] आत्मकथा में एक लम्बी बहस विवाह को लेकर मैत्रेयी और कस्तूरी में चलती है और अंतत: मैत्रेयी की विजय होती है।

मूल्यों के संक्रमणकाल में भारतीय नारी ने अपनी स्थिति को पहचाना है। घर से बाहर निकलकर स्वतंत्रता हासिल की है और प्रेम-विवाह के प्रति स्वतंत्र निजी विचारों को अपनाया है।आत्मकथा 'हादसे' में रमणिका गुप्ता बताती हैं कि ''जाति तोड़कर और वह भी प्रेम-विवाह–दोनों ही परिवार की परंपरा और मर्यादा के लिए चुनौती के रूप में देखे जा रहे थे। मामा ने मेरा घर से निकलना बन्द कर दिया था। माँ आई। मेरी खूब पिटाई हुई पर मैं कटिबद्ध थी। फिर मुझे पटियाला ले जाया गया। रोज़ मार पड़ती। फैसला बदलने के लिए दबाव पड़ता।''[16]

इसी तरह 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी द्वारा राजेन्द्र यादव से विवाह करने की बात सुनकर मन्नू के पिताजी के शादी को रोक देने का आदेश देने वाले पत्र आखिरी दिन तक भी आते रहे। यद्यपि 'दोहरा अभिशाप' की कौसल्या बैसंत्री को उनके माता-पिता से अंतरजातीय विवाह करने की छूट मिल गई थी किंतु समाज के लोगों द्वारा इस विवाह का डटकर विरोध किया गया। कौसल्या बैसंत्री इस संबंध में बताती हैं कि ''शादी की रस्म पूरी हुई और हम विवाह-बंधन में बँध गए। तुरंत ही पत्थर बरसने लगे।'[17]

स्त्री का संघर्ष 'चीज़' से व्यक्ति और व्यक्ति से व्यक्तित्व बनने के लिए है । परंपराओं को नकारने वाली रमणिका गुप्ता समाज में अपनी अलग पहचान बनाना

चाहती हैं। वे लिखती हैं ''इतना ही नहीं, अपनी अलग पहचान बनाने की धुन मुझमें इतनी तीव्र हो गई थी कि अगर किसी समारोह का निमन्त्रण-पत्र मेरे नाम पर न आए तो मैं प्रकाश के साथ श्रीमती वी.पी.गुप्ता बनकर जाने से इनकार कर देती थी। ''मुझे लोग मेरे कारण पहचानें, प्रकाश की पत्नी होने के कारण नहीं''– मेरे मन में यह भावना अति तीव्र हो गई थी।''[18] और इसीलिए अपने स्वयंसिद्धा बनने के संकल्प को पूरा करने के लिए वह अपने पति और बच्चों को छोड़कर स्त्रियों को स्वावलम्बी बनाने वाली संस्थाओं को चलाने के लिए धनबाद में अकेले रहने का निर्णय करती है।

रमणिका ने अपने अनुभव से जाना है कि "एक औरत को आगे बढ़ने के लिए 'थेथर' होना भी जरूरी है।....इसका मतलब है खुद को अपनों की बेरूखी सहने को भी तैयार रखना, हँसते-हँसते कुत्सित व्यंग्य, कुटिल मुस्कानें, द्विअर्थी वाक्य पचाने की आदत डालना और कभी-कभी दूसरों के वाक्यों को उन्हीं के खिलाफ मुहिम छेड़ने के लिए उछालना। पीठ थपथपाकर बहादुरी का वास्ता देने वाले भी बहुत मिलते हैं राजनीति में–खासकर औरतों को। उनकी नीयत को पहचानना और सब सुनकर समझकर, अपने फैसलों पर अडिग रहना ही अगर 'थेथरपन' है तो वह राजनीति में स्त्रियों के लिए लाजिमी है।''[19]

वे कहती हैं कि इन नेताओं के यहाँ औरतों को फुसलाने और फँसाने के लिए विधिवत दलाल होते हैं जो केवल औरतों को डिमोरेलाइज़ और हतोत्साहित करने में माहिर होते हैं ताकि राजनीति में आई स्त्रियाँ इनकी शर्तों पर जीने को विवश हो जाएँ। लेकिन रमणिका ने इन स्थितियों का डटकर सामना किया। उन्होंने कांग्रेस से त्यागपत्र देते हुए कहा कि ''मैं अपना रास्ता खुद बनाने में सक्षम हूँ। ... कांग्रेस पार्टी में केवल लताएँ ही फुनगी तक पहुँच सकती हैं। जो महिला स्वयं पेड़ बनने की क्षमता रखती हो उसे काट दिए जाने की मुहिम चलाई जाती है और मैं लता बनने को तैयार नहीं चूँकि मैं खुद निर्णय लेने में सक्षम हूँ।''[20] और एक प्रतिभाशाली बौद्धिक स्त्री अपने सीमित स्व से बाहर निकलकर एक विस्तृत फलक को नापती है। मर्यादा,नैतिकता और असुरक्षा की भावना से छीने गए आत्मविश्वास को स्त्री अपनी बौद्धिक कुशलता से प्राप्त करना चाहती है लेकिन उसे निषेधों और वर्जनाओं में जकडकर पीछे खींचा जाता है किन्तु इन्हीं दबावों से निकलकर उसका प्रतिरोध सामने आता है ।

साहित्य समाज भी औरतों की सीमाएँ निश्चित करना चाहता है। उसे लिखने से रोका जाता है। आत्मकथा 'कागजी हैं पैरहन' में शाहिद साहब इस्मत की रचनाओं पर आपत्ति जताते हैं तो इस्मत उन्हें उनकी रचना 'गुनाह की रातें' में गंदे-गंदे जुमले लिखने पर फटकारती हैं । इस पर शाहिद साहब कहते हैं –''मेरी और बात है। मैं मर्द हूँ।''[21] तो इस्मत जवाब देती हैं ''मतलब यह कि आपको खुदा ने मर्द बनाया इसमें मेरा कोई दखल नहीं और मुझे औरत बनाया इसमें आपका कोई दखल नहीं। मुझसे आप जो चाहते हैं वह सब लिखने का हक आपने नहीं माँगा, न मैं आजादी से लिखने का हक आपसे माँगने की जरूरत समझती हूँ।''[22] इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य समाज औरत को जिस नैतिकता की सीमा में रखना चाहता है वह सीमा स्वयं अपने लिए नहीं मानता।

साहित्य जगत में स्त्री का समाज के केंद्र में आना हमारे आर्थिक सामाजिक विकास का परिणाम है । स्त्री प्रश्नों ने समाज के यथार्थ पर नए सिरे से सोचने को विवश किया ।

स्त्री के जीवन में आधुनिकता के सन्दर्भ में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण महत्वपूर्ण है । कृष्णा अग्निहोत्री इस पुरुष समाज की दोगली मानसिकता के सन्दर्भ में लिखती हैं कि तरक्की के नगाड़े बजाकर इक्कीसवीं सदी तक पहुँचने वाला भारतीय पुरुष-समाज अब भी किसी बुद्धिजीवी ,कलाकार,प्रतिभाशाली महिला और साहित्यकार को वास्तविक रूप से सम्माननीय दृष्टी से नहीं देखता। ...समाज के रवैये में अभी तक सम्भावना नहीं है कि वह किसी संकट में फंसी हुई एवं साहित्य सृजन करनेवाली स्त्री को देह से इतर देखे।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने बहुआयामी व्यक्तित्व को निरंतर सिद्ध करते हुए भी स्त्री आज भी अपने श्रम एवं यौन-शोषण के लिए अभिशप्त है। समाज में व्याप्त स्त्री-पुरुष असमानता की नीति का परिणाम नारी शोषण के रूप में जीवन के हर क्षेत्र में दिखाई देता है।

स्त्रियों द्वारा आत्मकथा लिखकर अपने जीवन के अँधेरे पक्षों को सार्वजनिक कर देना अपनी शक्ति और प्रतिरोध का परिचय है । सुशीला टांकभौरे लिखती हैं "मैं जो बोलती हूँ वह गलत नहीं यह जानते हुए भी मुझे बोलने क्यों नहीं दिया जाता ?...समझदार समाज सुधारक पति मुझे

सच्चाई क्यों नहीं कहने देते ? सच्चाई को कुबूल क्यों नहीं करते ?इसका उत्तर मुझे कभी नहीं मिला । मैं कितने बरसों तक इन स्थितियों का सामना करती रही । कितने बरसों तक मैंने मानसिक-यातना ,वेदना को सहा । क्या मुझे एक बार भी इन बातों को बताने का हक नहीं । मुझे यह हक है । समाज में न जाने कितनी स्त्रियाँ जीवन भर जुल्म सहती हैं । कई तो पति द्वारा जान से मार दी जाती हैं फिर भी मरते दम तक पति को दोष नहीं देतीं । स्त्रियों का यह संस्कार,यह आदर्श ही पुरुष को निरंकुश बनता है । "[23]

बेबी हालदार अपनी आत्मकथा 'आलो अंधारी' में अपनी स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखती है–''मैं असहाय एक व्यक्ति की बंदिनी जो थी। वह जो कहे वही मुझे सुनना होगा, जो कहे वही करना होगा लेकिन क्यों? जीवन तो मेरा है, न कि उसका? क्या मुझे उसके कहे अनुसार सिर्फ इसलिए चलना होगा कि मैं उसके पास हूँ? कि, वह मुझे दो मुट्ठी भात देता है? वह जिस तरह रखता है उस तरह तो कुत्ते-बिल्ली को रखा जाता है। जब वहाँ मुझे कोई सुख-शांति नहीं मिलती तो क्या जरूरी है कि निर्जीव जैसी मैं उसके पास पड़ी रहूँ?''[24]

एक पढ़ी लिखी दलित स्त्री कौसल्या का पति ''देवेन्द्र कुमार को स्वतंत्रता सेनानी का ताम्रपत्र मिला और पेंशन भी मिलती है। सरकार ने उसके कार्य की प्रशंसा की थी। किन्तु यही व्यक्ति अपने घर में लड़ाई करता था अपनी पत्नी से। प्रशंसा तो दूर, उसे पेंशन के जो पैसे मिलते, उनमें से भी पत्नी को एक पैसा भी नहीं देता, उसके द्वारा घर का सारा काम करने पर भी।''[25]

सुशीला टांकभौरे अपनी आत्मकथा में लिखती हैं "यह एक स्त्री का दुःख नहीं ,न जाने कितनी स्त्रियाँ मेरी तरह जिंदगी का संताप भोगती हैं। न शिकवा,न शिकायत!जिंदगी का ज़हर चुपचाप पीते रहना,वे अपनी किस्मत मान लेती हैं । यह परंपरा टूटनी चाहिए । स्त्रियाँ स्वयं अपना दुःख बतायेंगी । अपने कष्ट और अन्याय की बात स्वयं कहेंगी,तभी लोग इन बातों को समझेंगे । जो स्त्रियाँ कभी घर से बाहर नहीं निकल पातीं,उनको शोषण,उत्पीडन के साथ शारीरिक और मानसिक पीड़ा सहने का संताप होता है ,लेकिन जो स्त्रियाँ घर के बाहर की दुनियां से जुडकर भी,शोषण-उत्पीडन सहते हुए शारीरिक और मानसिक पीड़ा सहती हैं,उसका संताप कहीं ज्यादा होता है ।"[26]

कौशल्या बैसंत्री दलित स्त्रियों को सम्मान के साथ प्रगति करने के लिए पैरों पर खड़े होने तथा अपने पर विश्वास रखकर आगे बढ़ने का संदेश देती हैं । वह कहती हैं कि हमें अपनी आत्मा में शक्ति जगानी होगी, दूसरों पर आश्रित होने से कुछ नहीं होगा।

सन्दर्भ:

1. दुर्रानी, तहमीना –मेरे आका , अनुवाद - मोज़ेज़ माइकेल,वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002,द्वितीय संस्करण-2004,पृ.29
2. नसरीन, तसलीमा – मेरे बचपन के दिन , अनुवादक अमर गोस्वामी,वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002,संस्करण-2004,पृ.282
3. खेतान. प्रभा –अन्या से अनन्या ,राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002,पहला संस्करण-2007,पृ.45
4. वही,पृ.131
5. वही,पृ 251
6. दुर्रानी, तहमीना-मेरे आका , अनुवाद - मोज़ेज़ माइकेल,वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002,द्वितीय संस्करण-2004,पृ.100
7. वही,पृ.160
8. वही ,पृ.125
9. वही,पृ.353
10. वही,पृ.360
11. पुष्पा, मैत्रेयी-कस्तूरी कुंडल बसै ,राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली-110002,पहला संस्करण-2002,पृ.31
12. वही,पृ.58
13. वही पृ.59
14. वही,पृ.66
15. वही,पृ.108
16. गुप्ता, रमणिका –हादसे ,राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110051,पहला संस्करण-2005 ,पृ.24
17. बैसंत्री, कौसल्या-दोहरा अभिशाप ,परमेश्वरी प्रकाशन, प्रीत विहार, दिल्ली-110092,पहला संस्करण-1999,पृ.95
18. गुप्ता, रमणिका-हादसे ,राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110051,पहला संस्करण-2005 ,पृ.26
19. वही,पृ.106-107
20. वही,पृ.30
21. चुगताई इस्मत -कागज़ी है पैरहन , लिप्यंतरण-इफ्तिख़ार अंजुम,राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,दरियागंज, नई दिल्ली-110002,दूसरी आवृत्ति-2004,पृ.30
22. वही,पृ.30
23. टांकभौरे, सुशीला -शिकंजे का दर्द ,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली ,पृ.200
24. हालदार बेबी -आलो-आँधारि, अनुवादक - प्रबोध कुमार,रोशनाई प्रकाशन, काँचरापाड़ा, पं. बंगाल,पहला संस्करण-दिसम्बर, 2002,पृ.59
25. बैसंत्री, कौशल्या-दोहरा अभिशाप ,परमेश्वरी प्रकाशन, प्रीत विहार, दिल्ली-110092,पहला संस्करण-1999,पृ.105
26. टांकभौरे, सुशीला-शिकंजे का दर्द ,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली ,पृ.205